

श्रीमंत शंकरदेव और गुरु जम्भेश्वर की वाणी का सामाजिक सरोकार

रवि कुमार

मध्यकाल के उदय के साथ, भारतीय समाज में स्वर्ग और नरक की चिंता बढ़ती चली जा रही थी। समाज, धर्म के नाम पर बँट रहा था, जाति-पाति, अन्धविश्वास, मूर्तिपूजा आदि रूढ़ियों में जनसमूह फँसता चला जा रहा था। ऐसे समय में समाज को सही राह पर लाने का काम संतों ने अपनी वाणी से किया। "संत कवियों ने अपनी वाणी के माध्यम से सामाजिक विभेद को पाटने का काम किया और 'मानुष प्रेम' को अपनी वाणी का मूल स्वर बनाया।"¹ गुरु जम्भेश्वर और श्रीमंत शंकरदेव की अहम् भूमिका इस सामाजिक समरसता में रही है। इन दोनों ही संतों की मूल चिंता सामान्य जन को ऊँचा उठाने और लोक कल्याण की ओर उन्मुख करने की रही है। दोनों संत एक-दूसरे के समकालीन थे, गुरु जम्भेश्वर का जन्म राजस्थान के पीपासर नामक गाँव में 1451 ई. को हुआ और श्रीमंत शंकरदेव का जन्म भी 1449 ई. में असम में हुआ। "दोनों ही संत, गौतम बुद्ध की तरह अपने दुख और पीड़ा को भूल कर समाज के लिए चिंतित होते हैं और उनके लिए संघर्ष करते हुए अपने शरीर का परित्याग कर देते हैं।"²

समाज में शास्त्र के नाम पर धर्म को चलाने वाले पाखंडियों ने अनेक बंदिशें लगा रखी थी, जिसका खामियाजा आम जनता भुगत रही थी। इसलिए इन संतों ने कागज पर लिखी बातों को झुठलाते हुए आँखों देखे सच को समाज का धर्म बनाया, "तेरा मेरा मनुवां कैसे एक होइ रे/ मैं कहता हों आँखन देखि, तू कहता कागद की लेखी।"³ अनुभव से प्राप्त सत्य को इन संतों ने अपनी वाणी का मुख्य आधार बनाया। संतों की एक लंबी परंपरा समाज में मौजूद रही है, यह केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं रही बल्कि दक्षिण, पूरब और पश्चिम सभी तरफ संत परंपरा मौजूद रही, लेकिन इन सभी संतों के अनुभव का सत्य एक-सा रहा। इसकी एक वजह यह हो सकती है कि सत्य चाहे किसी युग का या समाज का क्यों न हो, सत्य हमेशा सत्य ही रहेगा उसे दबाया या कुचला नहीं जा सकता है और एक दूसरी वजह इन संतों का यायावर प्रवृत्ति का होना है। समाज के इन संतों ने ज्ञान प्राप्त करने या उसमें वृद्धि के लिए यात्राएं की, और समाज के भोगे हुए सत्य को अपनी वाणी का रूप दिया। गुरु जम्भेश्वर और श्रीमंत शंकरदेव ऐसे ही संत हैं जिन्होंने ज्ञान प्राप्ति के लिए भारत का भ्रमण किया। गुरु जम्भेश्वर कहते हैं कि-

"गाँव सुंदरियो, छील बलदियो छंद मंद भालदियौ

अजमें हुंता नागोवाड़े रणथंभोर गढ़ गागरणों।

फिरि फिरि दुनियां परखि लहं

थटै बंभणिया और गुजरात आछोजाई सवालाख

मालवै परबत मांड़ मांहे न्यांन कथं।

खुरासांग गढ़ लंका भीतरि गूगन खैयौ परठयौ।..

किहं गुण सायरा मीठो हुंतो किहि औगंगण हुवो खार खारुं।⁴ श्रीमंत शंकरदेव भी गुरु जम्भेश्वर की तरह ही भारत का भ्रमण कई वर्षों तक करते हैं। भारत भ्रमण के दौरान अनेक संतों से शंकरदेव की भेंट-वार्ता हुई और अनेक अन्य संतों के बारे में जानने और सुनने को भी मिला। साथ ही अन्य संतों की वाणी से भी उनका परिचय मिलता है। शंकरदेव अपनी वाणी में इस बात का उल्लेख भी करते हैं। "उरेशा वाराणसी ठावे ठावे ॥ कबिर- गीत शिष्ट सबे गावे ॥"⁵ शंकरदेव ने भारत के लगभग सभी प्रमुख तीर्थस्थलों की यात्रा की है, "जिनमें प्रमुख थे- काशी, गया, मथुरा, वृंदावन, प्रयाग, बदरिकाश्रम, द्वारका, रामेश्वरम आदि। इन सभी स्थानों में शंकरदेव ने वैष्णव धर्म का महत्त्व प्रतिपादित किया और लोगों में भागवत धर्म के प्रति चेतना जागृत की। वह सबसे अधिक दिनों तक जगन्नाथपुरी में रहे, जहाँ उन्हें भक्ति योग का ज्ञान हुआ।... अपनी यात्रा के दौरान शंकरदेव ने जहाँ एक ओर लोगों में नई विचार-क्रांति जागृत की, वहीं समाज को भागवत धर्म का मर्म समझाकर उसे नई चेतना दी।"⁶ भारत भ्रमण से लौटने के बाद शंकरदेव ने सांसारिक जीवन को त्यागते हुए अपना सारा जीवन ग्रन्थ रचना और सामाजिक सरोकार में लगा दिया, वह अपने परिवार के लोगों से यह कहते भी हैं कि, "अब इन सांसारिक कर्मों में मेरा चित्त नहीं रमता। अब यह कर्म तुम्हीं लोग करो। मैं तो अब ग्रन्थ और पद की रचना करूँगा।"⁷

गुरु जम्भेश्वर और श्रीमंत शंकरदेव दोनों ही भारत भ्रमण करते हैं, परन्तु दोनों एक दूसरे से मिले हो इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। लेकिन दोनों ही संत 'वैष्णव धर्म' को समाज के लिए स्थापित करते हैं। जहाँ ऐसे समय में जब संपूर्ण भारतवर्ष में मुस्लिम आक्रमणकारी एवं मुस्लिम शासन-स्थापित हो रहा था और यह शासन अपने धर्म के प्रचार-प्रसार व विस्तार में लगा हुआ था, ऐसे समय में गुरु जम्भेश्वर और श्रीमंत शंकरदेव विष्णु और हरि नाम के जाप का मंत्र समाज को दे रहे थे। गुरु जम्भेश्वर कहते हैं कि, "विसन विसन तूं भणि रे प्रांणी"⁸, वहीं श्रीमंत शंकरदेव लिखते हैं कि, "कलिर धर्म हरि नाम जान।"⁹ इस विष्णु के जाप से प्रभावित होकर गुरु जम्भेश्वर 'बिश्नोई पंथ' की स्थापना करते हैं और श्रीमंत शंकरदेव 'एकशरण-नाम धर्म' को स्थापित करते हैं। इन दोनों ही धर्मों में किसी भी जाति, संप्रदाय, धर्म, राजा, प्रजा का इंसान इस धर्म को अपना सकता था। दोनों ही धर्म 'वैष्णव सम्प्रदाय' के एकमात्र आराध्य-भगवान विष्णु के उपासक हैं। विष्णु का जाप करने से ही सारे दुःख और पीड़ाओं का अंत हो जायेगा और आत्मा को बैकुंठ की प्राप्ति भी हो जाएगी। गुरु जम्भेश्वर कहते हैं कि, "विसन विसन तूं भणि रे प्रांणी, पैकें लाख उपाजूं । रंतन कया वैकुंठे वासो, जूरा मरण भोव भाजूं ॥"¹⁰ श्रीमंत शंकरदेव भी इसी तरह भगवान विष्णु की कथा सभी जन को सुनने भर से उसका भला हो जाने की बात करते हैं - "कृष्ण चरित्र शूनियोक सर्व जने ॥ जीवन्ते नेरिबे बहुमान धने-जने ॥ / मरिलेओ थिति मूल्य प्रति देखें विष्णुर पुरीत ॥ इहलोके परलोके दुयो लोके हित ॥"¹¹

प्रेम के इस धर्म को मनुष्य इतनी आसानी से नहीं समझ सकता है, क्योंकि यह समाज अनेक धर्मों, जातियों, अंधविश्वासों और मन के द्वंद्व में घिरा हुआ है। "दोय दिल दोय मंन सीवी न कंथा, दोय दिल दोयमंन पुलिय न पन्था।"¹² उसके लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा इसकी समझ वो खो चुका है, क्योंकि समाज को चलाने वाले पंडित, साधु, काजी सभी पथ से भटक चुके हैं, - "बामण था ते वेदे भूला, काजी कलम गुमाई ॥ जोग विहूणां जोगी भूला, मुडियै अकलि गुमाई।"¹³ खोए हुए इस समाज को पथ पर लाने का कार्य केवल अच्छा गुरु कर सकता है, क्योंकि गुरु की महिमा से हम अपने जीवन का निर्माण कर सकते हैं। संत कवियों ने गुरु को जीवन में सर्वोपरि माना है। लगन के साथ श्रवण द्वारा तथ्यों पर विचार करना, परखना, मनन करना और सही निष्कर्ष पर पहुँचना गुरु के द्वारा ही संभव है। "गुरु प्रसादे केवल ग्यांने"¹⁴। श्रीमत् शंकरदेव भी गुरु की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि, "करता जो जन भक्ति-ज्ञान प्रदान । करता जो उसकी सेवा, तर जाता संसार सुजान ॥। अतः वही है नरोत्तम बुद्धिमान ॥ जगत में और नहीं कोई उसके सामान ॥ भक्ति ज्ञान दाता गुरु बिन नहीं कोई सेवा-वंदन ॥ बार बार समझाया तुम्हें, समझ लो कथन।"¹⁵ एक अच्छा गुरु ही जीवन को नाव को सही से किनारे तक पहुँचा सकता है। "यह नर-नर है नाव सुदृढ़, सुसार / उपदेश दाता गुरु इसके खेवनहार।"¹⁶ गुरु जम्भेश्वर जीवन के कल्याण के लिए गुरु के बताए आदर्शों पर चलने की बात करते हैं, "सतगुरु मिलियौ सतपंथ बतायौ, वेद गरथ उदगारुं।"¹⁷ गुरु जम्भेश्वर आगे कहते हैं कि, "सतगुरु मिलियौ सतपंथ बतायौ भ्रांति चुकाई / अवर न बूझिबा कोई।"¹⁸ सतगुरु के बताए हुए रास्ते पर चल कर ही इन सभी संतों ने समाज की आँखों पर पड़े अन्धकार के परदे को हटाने का काम किया और इस अन्धकार

को दूर करने के लिए संतों ने लोकभाषा को आधार बनाया। मध्यकालीन संतों की सबसे बड़ी खास बात यह थी कि उन्होंने अपनी वाणी को लोक तक पहुँचाने के लिए किसी शास्त्रीय या राजा की भाषा का अनुकरण नहीं किया बल्कि 'लोक भाषा' को अपनी वाणी का आधार बनाया, जिस तरह गौतम बुद्ध ने समाज कल्याण के लिए पालि को अपने उपदेश का आधार बनाया था। कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, जायसी, ज्ञानदेव, तुकाराम, मलूकदास, नरसी मेहता आदि सभी संतो ने लोक भाषा को ही अपनी वाणी के लिए उपर्युक्त समझा। ठीक इसी तरह बिश्नोई एवं एकशरण धर्म को समाज तक पहुँचाने के लिए जम्भेश्वर और शंकरदेव ने लोकभाषा का चयन किया। जम्भेश्वर ने मरुप्रदेश के ग्रामीण समाज के बोलचाल की भाषा। 'ठेठ मरुभाषा' को चुना, क्योंकि गुरु जम्भेश्वर राजस्थान के मरुस्थलीय प्रदेश में रहते थे। "हरी कंगहड़ी मंडप मैड़ी, तांहां हमारा वास।"¹⁹ उन्होंने जनसाधारण के स्तर के अनुरूप ही अपनी शब्दावली को चुना। इसी जनसाधारण विशेष के कारण इनकी वाणी यहाँ के लोग- बाग को कंठस्थ याद है, आज भी बीकानेर, पीपासर आदि अनेक स्थलों पर इनकी वाणी बड़े चाव से गाई जाती है।

"कैह का पित माई बहण र भाई

कैह का पख परवारुं

भूली दुनिया मरि मरि जामें

न चीन्हें करतारुं।¹²⁰

भारत भ्रमण के दौरान शंकरदेव ने देश की एकता के लिए भाषा के महत्त्व को गहराई से समझा। शंकरदेव ने देखा कि वैष्णव धर्म-प्रचार में ब्रज बोली तथा मैथिली भाषा का बहुत बड़ा योगदान है। अतः असम में वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने लोक भाषा 'ब्रजबुलि' को चुना। इस सन्दर्भ में देवकांत बेजबरुआ लिखते हैं कि, "शंकरदेव की भाषा-शैली दो प्रकार की थी। एक तो शुद्ध असमिया की तथा दूसरी ब्रज और मैथिली मिश्रित असमिया की। तीर्थयात्रा से पूर्व की रचनाओं की भाषा असमिया है और यात्रा से लौटने के बाद की कृतियों में दूसरे प्रकार की भाषा का प्रयोग मिलता है।"²¹ शंकरदेव ने ब्रजबुलि भाषा में बरगीत एवं अंकीयानाट की रचना की।

"देवर मध्यत दैवकी नन्दन

धर्मर मध्यत नाम

दुइत परे तिनि नाइ-नाइ-नाइ

भक्त पूरण काम।¹²²

मनुष्य की पहचान उसके कर्मों से है, कर्म ही सबसे बड़ा धर्म है। तुलसीदास इसी मान्यता को स्वीकार करते हैं, "करम प्रधान विश्व रचि राखा । / जो जस करै सो तस फल चाखा।"²³ संतों ने भक्ति के क्षेत्र में व्याप्त धार्मिक, सामाजिक संकीर्णताओं की अवहेलना की है। तभी इन संतों ने मन मन्दिर को प्रमुखता दी है और कहा है जहाँ दिल में प्रेम होगा वहीं प्रभु का वास होगा। गुरु जम्भेश्वर मन में मन्दिर होने की बात करते हैं और सभी तीर्थों को वे मन के भीतर ही मानते हैं। अगर आपका मन शुद्ध एवं प्रेम से भरा होगा तो ईश्वर के दर्शन आपको सामान्य जगह भी हो जायेंगे उसके लिए किसी तीर्थ यात्रा की आवश्यकता नहीं। "अठसठि तीरथ हिरदै भीतरि, को को गुरु मुखि विरला न्हायो"²⁴। तीर्थ और धर्म के नाम पर समाज में जो आडंबर किए जाते हैं, गुरु जम्भेश्वर उस संदर्भ में कहते हैं कि, "कोड़ि गरु दे तीरथां दांनू/ पंच लाख तुरंगम दांनू।"²⁵ कण कंचन पाट पटंबर दांनू/ गज हसती दांनू अति बलि दांनू । संत कवियों ने मनुष्य की एकता पर सर्वाधिक बल दिया है। तभी इन संतों ने लोकहित के सिद्धांत पर धर्म और अधर्म की नई परिभाषाओं को निर्मित किया है। इन संतों ने जीवन मूल्य का मुख्य आधार मानस प्रेम को माना है, "सब नर करहिं परस्पर प्रीति, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।"²⁶

श्रीमंत शंकरदेव भी कर्म की महता को स्वीकार करते हैं। परन्तु इस कर्म के लिए मन रूपी मंदिर को प्राथमिकता देते हैं। शंकरदेव मानते हैं कि यह मन ही किसी काम को करने से रोकता है और काम करने की इजाजत भी देता है। यह मन कभी स्थिर नहीं रहता है, "नाना कर्म करिबाक करे आलोचना।/ एको कर्म स्थिर नोहे ताक बुलि मन।"²⁷ परन्तु मनुष्य को मन की चंचलता को समझना होगा, और अच्छे-बुरे की समझ भी बनानी होगी। इसीलिए मनुष्य को कोई भी कार्य शुद्ध आचरण से करना होगा, जिससे किसी का अहित न हो। शंकरदेव इसी कारण अपनी वाणी में शुद्ध मन से किये गए कार्य पर जोर देते हैं, क्योंकि अगर मन अशुद्ध होगा तो सारे कर्म विफल हो जायेंगे।

'अशुद्ध मन कर्म विफल ॥ स्रवे येन आवाँ घटक जल ॥'²⁸ यह शुद्ध मन ही आपके स्वर्ग और नरक का द्वार दिखाता है और यह मन ही आपको अपने-पराय का भेद भी बताता है - "मने पाप पुण्य स्वर्ग मने से नरक । / मनेसे करिछे भेद आपोन परक।"²⁹

संत वाणी की मुख्य चिंता मनुष्य को सिर्फ मनुष्य बनाने की है और मनुष्यता उसका एक मात्र धर्म है। इस चिंता को गुरु जम्भेश्वर और श्रीमंत शंकरदेव दोनों ही अच्छे से जानते थे। मनुष्य धर्म और जाति में इतना पिस गया था कि वह अपनी मनुष्यता को भूल चुका था। इन दोनों ही संतों ने मनुष्य में मनुष्यता के गुण जाग्रत करने और मानव-जीवन को सार्थक बनाने का सही मार्ग दिखाने का काम किया और मनुष्य को सिर्फ मनुष्य बने रहने के लिए ही प्रेरित किया। शंकरदेव कहते हैं कि, "इहेन मनुष्य तनु / सेन्थरे-न पाइबा पुनु।"³⁰ मनुष्य को मनुष्य बनाने के साथ-साथ 'जीने की विधि' सिखाने का काम भी इन संतों ने किया। जो मनुष्य असफल, दिग्भ्रमित और उलझन में फंसे रह जाते हैं, उन्हें संघर्षशील जीवन में लक्ष्य तक पहुँचाने का सरल उपाय जम्भेश्वर बताते हुए कहते हैं कि, 'जीते-जी मरो, जीवनमुक्ति प्राप्त करो; पर वही ऐसा कर सकता है जो अपना कर्तव्य पालन करता है, ईमान की कमाई खाता है और सत्य को प्रमाण मानते हैं'। 'जीवत मरो रे जीवत मरो जिण जीवण की विधि जांणी । जे कोई हो होय हरि करि आवै तो आपण होइयै पांणी।'³¹ इसके आगे वह कहते हैं कि, 'इस संसार में तो निश्चय ही तेरा जीवन स्थिर नहीं रहेगा, तू मृत्यु से बच नहीं सकेगा। विरले पुरुष ही भली मूल का सिंचन करते हैं और परमतत्त्व को जानने का प्रयास करते हैं। जो जीवन की विधि जानते हैं, वही ऐसा कर सकते हैं'। "जां जीवण की विधि जांणी ॥ जीवतड़ा कुछि लाहो होयसी, मूवां न आवै हांणी।"³² जीने की विधि में मनुष्य के परोपकारी स्वभाव के होने पर भी इन संतों ने जोर दिया है। वृक्ष की तरह परोपकारी होने की बात इन संतों ने की है। जिस तरह वृक्ष बिना किसी अहित के सभी का हित चाहता है और सभी को अपने से सिर्फ लाभ पहुंचाता है ठीक उसी तरह मनुष्य को भी परोपकारी होना चाहिए। बिना किसी लालच के सभी की मदद करनी चाहिए "पर उपकारी तरु जनम सार्थक / संतर बिमुख जेन नुहिके पार्थक ॥। बाकलि पल्लव मूल पत्र पुष्पफल ॥ जेइ जिबा चावे पावै वृक्षत सकल ॥/ जीवनर साफल देहीर एहिमाने ॥ जीवै पर उपकार करि अर्थ प्राणे ॥"³³

मध्यकालीन संतों ने अपने अनुभव के आधार पर मानव मूल्यों को समाज में स्थापित किया। समाज जहाँ मनुष्य और मनुष्यता के धर्म को खो कर जाति, धर्म, रूढ़ि, अन्धविश्वासों में बँट रहा था, ऐसे समय में गुरु जम्भेश्वर और श्रीमंत शंकरदेव ने एक देव वासुदेव और एक जाति मनुष्य जाति की संकल्पना का उदात्त आह्वान किया। दोनों ही संत अपनी वाणी से इस मानव समाज में युगों-युगों तक प्रासंगिक बने रहेंगे।

"मिलता कितने पुण्य से भारत में मनुष्य तन।

चिंतामणि-जन्म हाथों में खो जाता धन ॥

टूट रही आयु क्षण क्षण, दिन दिन।

कलि में और कुछ नहीं, जानो हरि नाम बिन॥"³⁴

संदर्भ:-

1. 'मानुष प्रेम भयउ बैकुंठी' - पद्मावत - मलिक मुहम्मद जायसी, पृ. 223
2. कहीं एक स्वर्ग है या नरक है इसकी किसे चिंता है? आत्मा है या नहीं, इसकी किसे परवाह है? कोई अपरिवर्तनशील सता है या नहीं, इसकी बारे में किसे व्यग्रता है? हमारे सामने यह संसार है और यह दुःख-पीड़ाओं से भरा हुआ है। इस संसार में उतरी, जैसे बुद्ध उतरे थे और इन। दुःख-पीड़ाओं को कम करने के लिए संघर्ष करो या प्रयत्न करते हुए मर जाओ। अपने को भूलो 'यही पहला सबक सीखना है।' प्रैक्टिकल वेदांत-स्वामी विवेकानंद
3. कबीर ग्रंथावली-माता प्रसाद गुप्त, पृ. 117
4. जम्भवाणी मूलसंजीवनी व्याख्या (सन्दर्भ सहित)- डॉ. किशना राम बिश्नोई, पृ. 236-237
5. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव-रामनिरंजन गोयनका, पृ. 5
6. शंकरदेव-हरिकृष्ण देवसरे, पृ. 9
7. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव-रामनिरंजन गोयनका, पृ. 6
8. जम्भवाणी मूलसंजीवनी व्याख्या (सन्दर्भ सहित)-डॉ. किशना राम बिश्नोई, पृ. 408
9. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव-रामनिरंजन गोयनका, पृ. 9
10. जम्भवाणी मूलसंजीवनी व्याख्या (सन्दर्भ सहित)- डॉ. किशना राम बिश्नोई, पृ. 412
11. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव-रामनिरंजन गोयनका, पृ. 15

12. जम्भवाणी मूलसंजीवनी व्याख्या (सन्दर्भ सहित)- डॉ. किशना राम बिश्नोई, पृ. 174
13. वही, पृ. 307
14. वही, पृ. 87
15. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव रामनिरंजन गोयनका, पृ. 55
16. वही, पृ. 55
17. जम्भवाणी मूलसंजीवनी व्याख्या (संदर्भ सहित) - डॉ. किशना राम बिश्नोई, पृ. 93
18. वही, पृ. 166
19. जम्भवाणी मूलसंजीवनी व्याख्या (संदर्भ सहित) - डॉ. किशना राम बिश्नोई, पृ. 285
20. वही, पृ. 142
21. ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य देवकांत बेजबरुआ, पृ. 420
22. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव रामनिरंजन गोयनका, पृ. 23
23. रामचरितमानस - तुलसीदास, पृ. 363
24. जम्भवाणी मूलसंजीवनी व्याख्या (संदर्भ सहित) - डॉ. किशना राम बिश्नोई, पृ.70
25. वही, पृ. 138-139
26. रामचरितमानस - तुलसीदास, पृ. 467
27. श्रीमंत शंकरदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. भूपेंद्र रायचौधरी, पृ. 110
28. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव रामनिरंजन गोयनका, पृ.-28
29. श्रीमंत शंकरदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. भूपेंद्र रायचौधरी, पृ. 110
30. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव-रामनिरंजन गोयनका, पृ.-28
31. जम्भवाणी मूलसंजीवनी व्याख्या (संदर्भ सहित) - डॉ. किशना राम बिश्नोई, पृ. 376
32. वही, पृ. 266
33. श्रीमंत शंकरदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. भूपेंद्र रायचौधरी, पृ. 113
34. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव- रामनिरंजन गोयनका, पृ. 61

ई. मेल - ravi17893@gmail.com